निवेदन ।

जिन्होंने ससार में आकर सासारिक जीवों को अज्ञान अंधकार से निकाल कर अपने उज्वल आचरणों और उपदेशों से सुमार्ग पर चलाया, उन्हीं परम पूज्य प्रात स्मरणीय चौबीस तीर्थंकरों के पवित्र चरित्र लिखने के लिए आज मैं प्रवृत्त हुआ हूँ।

प्रवृत्त क्यों हुआ ? कारण यह है कि, हिन्दी मे तीर्थंकरों के चरित्राका अभाव है। जब मैं "जैन ससार" और 'मुनि' का सपादन करता था, तब मुझे कई बार बाहिर जाना पड़ता था। वहाँ अनेक बन्धुओं ने मुझे हिन्दी भाषा मे तीर्थंकरों के चरित्र प्रकाशित कराने की प्रेरणा की। मेरे अन्त करण में भी जबसे मैं अध्ययन करता था तभी से हिन्दी में जैन साहित्य देखने का उत्कट अभिलाषा थी। मगर अन्तराय कर्मने अब तक यह अभिलाषा पूर्ण न होने दी। श्री आत्मानद जैन ट्रेक्ट सोसाइटी अम्बाला की कृपा से आज वह सुयोग प्राप्त हुआ है।

मैं जानता हूँ कि, तीर्थंकरोंके अगाध चरित्र लिखने की योग्यता मुझमें नहीं है, मैं यह भी जानता हूँ कि, मुझमें अनेक भूलें होंगी मगर भूलें होंगी यह सोचकर ही क्या पवित्र कार्य हाथ में नहीं लेना चाहिए? बेशक नहीं लेना चाहिए। मगर क्या भूल करने वाला अपने प्रभु की भक्ति भी नहीं कर सकता है? जिसको पूर्ण ज्ञान नहीं होता है क्या उसे अपनी आन्तरिक भक्ति पुष्पाञ्जलि अपने इष्ट देव के चरणों में चढ़ाने का अधिकार नहीं होता है? यदि होता है तो वही भक्ति पुष्पांजलि मैं अर्पण करता हूँ। भगवान के पवित्र चारित्र लिख-पावन गुणगान कर अपने हृदय को सन्तुष्ट करता हूँ। प्रकाशित कराने का साहस इसलिए करता हूँ कि, मेरे समान भक्ति परायण जीव प्रभु के निर्मल गुण पढ़ कर अपने अन्तःकरण को पवित्र बनायेंगे। अन्यान्य सज्जन भी जो तीर्थंकरोंके चारित्र जानने के इच्छुक होंगे वे मेरे इस प्रयत्न से बहुत कुछ जान सकेंगे।

यह तीर्थंकर चरित्र की प्रस्तावना है। इसमें जो बात लिखी गई हैं वे सब बात समान रूप से सभी तीर्थंकरों के होती हैं। इन्हें जुदा लिखने का प्रयोजन यह है कि, प्रत्येक तीर्थ-

करके चरित्र में ये बातें न लिखनी पड़ें। समय की स्थिति का सामान्यतया निदर्शन कराने के लिए 'आरों' का भी साद्यन्त वृत्तान्त लिख दिया है।

श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसाइटी छोटे २ ट्रैक्ट ही प्रकाशित कराती है। यही कारण है कि संक्षेप ही में सब बातें समाप्त करनी पड़ेंगी। यद्यपि बातें संक्षेप में रहेंगी तथापि इस बात का खास तरह से ध्यान रक्खा जायगा कि, कोई महत्व की बात रह न जाय।

मैं विद्वान मुनि महाराजों और श्रावकों से प्रार्थना करता हूं कि, ये कोइ भूल रहे तो मुझे सूचित कर आभारी करें। मुझ जैसे अल्पज्ञ से भूलों का होना अवश्य भावी है।

सेवक,

कृष्णलाल वर्मा।

आरे।

समय विशेष को जैन शास्त्रों में आरा का नाम दिया गया है। एक कालचक्र होता है। मुख्यतया इस कालचक्र के दो भेद किये गये हैं। एक है अवसर्पिणी यानी उतरता और दूसरा है उत्सर्पिणी यानी चढ़ता। अवसर्पिणी के छः भेद हैं। जैसे-(१) एकान्त सुषमा, (२) सुषमा (३) सुषम दुःषमा (४) दुःषम सुषमा (५) दुःषमा, और (६) एकान्त दुःषम। इसी तरह उत्सर्पिणी के इसी तरह उल्टे गिनने से छः भेद होते हैं। अर्थात् (१) एकान्त दुःषमा (२) दुःषमा (३) दुःषम सुषमा (४) सुषम दुःषमा (५) सुषमा, और (६) एकान्त सुषमा। इन्हीं बारह भेदों का समय जब पूरा होता है तब कहा जाता है कि, अब एक कालचक्र समाप्त होगया है।

नरक, स्वर्ग, मनुष्य लोक और मोक्ष ये चार स्थान जीवों के रहने के हैं। उनमें से अन्तिम स्थान में अर्थात् मोक्ष में तो केवल कर्म-मुक्त जीव ही रहते हैं। बाकी तीन में कर्म

लिप्त जीव रहते हैं। नरक के जीवों के चौदह (१४) भेद किये गये हैं। स्वर्ग के जीवों के एकसौ अठयासी (१८८) भेद किये गये हैं और मनुष्य लोक के जीवों के ३०१ भेद किये गये हैं। मनुष्य लोक के कुछ क्षेत्रों में 'आरों' का उपयोग होता है। इसलिये हम यहां मनुष्य लोक के विषय में थोड़ासा लिख देना उचित समझते हैं।

मनुष्य लोक में मुख्यतया ३ खंडों में मनुष्य बसते हैं। (१) जम्बू द्वीप (२) धातकी खंड और (३) पुष्करार्द्ध। जंबुद्वीप की अपेक्षा धातकी खन्ड दुगना है और पुष्करार्द्ध धातकी खन्ड की बराबर ही है, यद्यपि पुष्कर द्वीप धातकी खन्ड से दुगना है तथापि उसके आधे हिस्से ही में मनुष्य बसते हैं इसलिये वह धातकी खन्ड के बराबर ही माना जाता है। जंबुद्वीप में, भरत, एरवत, महाविदेह, हिमवन्त, हिरण्य-वन्त, हरिवर्ष, रम्यक वर्ष, देवकुरु और उत्तर कुरु एसे नौ क्षेत्र हैं। धातकी खन्ड में इन्हीं नामों के इनसे दुगने क्षेत्र हैं और धातकी खन्ड के बराबर ही पुष्करार्द्ध में हैं। इनमें के प्रारंभिक यानी भरत, एरवत और महाविदेह

कर्म भूमि के सात हैं और बाकी के अकर्म भूमि के। इन्हीं कर्म भूमि के पांच भरत, पांच ऐरावत, और पांच विदेह में इन आरों का प्रभाव उपयोग होता है, और क्षेत्रों में नहीं।

महाविदेह में केवल चौथा 'आरा' ही सदा रहता है, भरत और ऐरवत में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का व्यवहार होता है। प्रत्येक आरे में निम्न प्रकार से जीवों के दुःख सुख की घटा बढ़ी होती रहती है।

१—एकान्त सुषमा। इस आरे में मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम तक की होती है। शरीर तीन कोस तक होता है। भोजन ये चार दिन में एक बार करते हैं। संस्थान इनका

१—जहां असि (शस्त्र का) मसि (लिखने पढ़ने का) और कृषि (खेती) व्यवहार होता है उसे कर्मभूमि कहते हैं।

२—जहां इनका व्यवहार नहीं होता है और कल्प वृक्षों से सब कुछ मिलता है उन्हें अकर्म भूमि कहते हैं॥

समचतुरस्र होता है। संहनन उनका वज्र ऋषभ नाराच

१—संस्थान छ होते हैं। शरीर के आकार विशेष को संस्थान कहते हैं। (१) सामुद्रिक शास्त्रानुसार शुभ लक्षण युक्त शरीर को 'समचतुरस्र' संस्थान कहते हैं। (२) नाभि के ऊपर का भाग शुभ लक्षण युक्त हो और नीचे का हीन हो उसे 'न्यग्रोध संस्थान कहते हैं। (३) नाभि के नीचे का भाग यथोचित हो और ऊपर का हीन हो उसे 'सादि' संस्थान कहते हैं। (४) जहाँ हाथ पैर, मुख, गलादि यथा लक्षण हों और छाती, पेट पीठ आदि विकृत हों उसे 'कुब्ज संस्थान कहते हैं। (५) जहां हाथ और पैर हीन हों बाकी अवयव उत्तम हों उसे 'वामन संस्थान कहते हैं। (६) शरीर के समस्त अवयव लक्षण हीन हों उसे 'वामन' संस्थान कहते हैं।

२—संहनन भी छ ही होते हैं। शरीर के संगठन विशेष को संहनन कहते हैं। (१) हाड़ दोनों तरफ से मर्कट बंध द्वारा बंधे हों, ऋषभ नामका तीसरा हाड़ उन्हें पट्टी की तरह लपेटे हो और उन तीनों हाड़ियों में एक हड्डी ठुकी हुई हो, वे वज्र के समान दृढ़ हों उस संहनन को वज्र ऋषभ नाराच' कहते हैं। (२) उक्त हड्डियां हों परन्तु कीला की तरह ठुका हुआ हाड़ न हो उसे 'ऋषभनाराच' संहनन कहते है। (३) दोनों ओर हाड़ और मर्कट बंध तो हों परन्तु कीली और पट्टी का हाड़ न हो उसे 'नाराच संहनन कहते हैं। (४) जहां एक तरफ मर्कट बंध और दूसरी तरफ कीला होता है उसे 'अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं। (५) जहां केवल कीली से हाड़ बंधे हुए हों, मर्कट बंध पट्टी न हो उसे 'कीलिका' संहनन कहते हैं। (६) जहां हड्डियां केवल एक दूसरे से अड़ी हुई हों, कीली नाराच, और ऋषभ न हों, जो जरासा धक्का लगने ही भिन्न हो जाय उसे 'छेवट्ठ' संहनन कहते हैं।

होता है। व क्रोध रहित, निरभिमानी, निर्लोभी और अधर्म त्यागी होते हैं। उस समय उनको असि, मसि और कृषि, व्यापार नहीं करना पड़ता है। अकर्म भूमि के मनुष्यों की भाँति ही उन्हें भी उस समय दस कल्पवृक्ष सारे पदार्थ देते हैं। जैसे-(१) मद्यांग नामक कल्पवृक्ष मद्य देते हैं। (२) भृतांग पात्र-बर्तन देते हैं। (३) तूर्यांग तीन प्रकार के वाजित्र देते हैं। (४-५) दीपशिखा और ज्योतिष्क प्रकाश देते हैं। (६) चित्रांग विचित्र पुष्पों की मालाएँ देते हैं। (७) चित्ररस नाना भाँति के भोजन देते हैं। (८) मण्यंग इच्छित भूषण देते हैं। (९) गेहाकार गंधर्व नगर की तरह उत्तम घर देते हैं। और (१०) अनग्न नामक कल्पवृक्ष उत्तमोत्तम वस्त्र देते हैं। उस समय की भूमि शर्करासे भी अधिक मीठी होती है। इसमें जीव सदा सुखी ही रहते हैं। यह आरा चार कोटा कोटि सागरोपमका होता है। इसमें आयुष्य, संहनन, आदि और कल्पवृक्षों का प्रभाव क्रमशः कम होता जाता है।

१—शास्त्र पुरुषों ने इन समय म असंख्यात समय हो जाते हैं। अथवा वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षणरूप काल जिसके भूतभविष्य का अनुमान न हो सके कि जिसका फिर भाग न हो सके उसको 'समय' कहते हैं। एक

२—सुषमा-यह आरा तीन कोटाकोटि सागरोपमका होता है। उसमें मनुष्य दो पल्योपमकी आयुवाले, दो कोस

असंख्यात समयों की एक 'आवली' होती है। ऐसी ... आवलियों का एक 'क्षुल्लक भव' होता है, इससे अपेक्षा किसी छोटे भव की कल्पना नहीं हो सकती है। ऐसे सत्तर क्षुल्लक भव, से कुछ अधिक में एक 'श्वासोच्छ्वास रूप प्राण' की उत्पत्ति होती है। ऐसे सात प्राणोत्पत्ति काल को एक 'स्तोक' कहते हैं। ऐसे सात स्तोक का एक 'लव' कहते हैं। ऐसे सतहत्तर लवका एक मुहूर्त (दो घड़ी) होता है। (एक मुहूर्त में १६७,७७ ... आवलियाँ होती हैं।) तीस मुहूर्त का एक 'दिन रात' होता है। पन्द्रह दिन रात का एक 'पक्ष' होता है। दो पक्षों का एक महिना होता है। बारह महिना का एक वर्ष होता है। (दो महिने का एक 'ऋतु' होता है। तीन ऋतुओं का एक 'अयन' होता है। दो अयन का एक वर्ष होता है।) असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम होता है। दश कोटाकोटि पल्योपम का एक सागरोपम होता है। बीस कोटाकोटि सागरोपमका एक कालचक्र होता है। ऐसे 'अनन्त' कालचक्र का एक पुद्गल परावर्तन होता है।

* (नोट—यहां 'अनन्त' शब्द और 'असंख्यात' शब्द अमुक संख्या के द्योतक हैं। शास्त्रकारोंने इनके भी अनेक भेद किये हैं। इस छोटी सी भूमिका रूप पुस्तक में उन सबका वर्णन नहीं हो सकता। इन शब्दों (असंख्यात या अनन्त) से यह अर्थ न निकालना चाहिए कि जिसकी संख्या ही न हो सके जिसका भी अन्त ही न आवे।)

ऊंचे शरीर वाले और तीन दिन में एकबार भोजन करने वाले होते हैं। इसमें कल्प वृक्षों का प्रभाव भी कुछ कम हो जाता है, पृथ्वी के स्वाद में भी कुछ कमी होजाती है और जलका माधुर्य भी कुछ घट जाता है, । इसमें सुख की प्रबलता रहती है, दुःख रहता है मगर क्षीण।

३—सुषमा दु:खमा। यह आरा दो कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें मनुष्य दो पल्योपमकी, आयुवाले, एक कोस ऊंचे शरीर वाले, और दो दिन में एक बार भोजन करने वाले होते हैं। इस आरे में भी ऊपर की तरह प्रत्येक पदार्थ में न्यूनता आती जाती है। इसमें सुख और दुःख दोनोंका समान रूप से दौरदौरा रहता है। फिर भी प्रमाण में सुख ज्यादा होता है।

४—दुखमा सुषमा। यह आरा बयालीस हजार कम एक कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें न कल्पवृक्ष कुछ देते हैं, न पृथ्वी स्वादिष्ट होती है और न जलमें ही माधुर्य रहता है। मनुष्य एक करोड़ पूर्व आयुष्य वाले और पांचसौ धनुष ऊंचे शरीर वाले होते हैं। इसी आरे से असि मसि

और कृषि का कार्य प्रारम होता है। इस में दु ख और सुख की समानता रहने पर भी दु'ख प्रमाण में ज्यादा होता है।

५ दु'खमा—यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। इसमें मनुष्य सात हाथ ऊच शरीर वाले और सौ वर्ष की आयु वाले होते हैं। इसमें केवल दुःख का ही दौरदौरा रहता है। सुख होता है मगर बहुत ही क्षीण।

६—एकान्त दुखमा। यह भी इक्कीस हजार वर्ष का ही होता है इसमे मनुष्य तीन हाथ ऊच शरीर वाले और सोलह बरस की आयुवाले होते हैं। इसमें सर्वथा दु ख ही होता है।

इस प्रकार छठे आरेके इक्कीस हजार वर्ष पूरे होजाते हैं, तब पुन उत्सर्पिणीकाल प्रारभ होता है उसमें भी उक्त प्रकार ही से छ आरे होते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि, अवसर्पिणी के आरे एकान्त सुषमासे प्रारभ होते हैं और उत्सर्पिणी के एकान्त दु खमासे। स्थिति भी अवसर्पिणी की समान ही उत्सर्पिणी के आरों की भी होती है। पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि ऊपर आयु, और शरीर की ऊँचाई आदि का जो प्रमाण बताया है वह आरे के प्रारभ में

होता है। जैसे जैसे काल बीतता जाता है वैसे ही वैसे उस में न्यूनता होती जाती है और जब आरा पूर्ण होता है तब तक उस न्यूनता का प्रमाण इतना हो जाता है, जितना अगला आरा प्रारम्भ होता है उस में मनुष्यों की आयु और शरीर की ऊँचाई आदि होते हैं।

ऊपर जिन आरों का वर्णन किया गया है उन में से तीसरे और चौथे आरे में तीर्थंकर होते हैं।

तीर्थंकरों की माताओं के चौदह स्वप्न।

अनादिकाल से संसार में यह नियम चला आ रहा है कि जब जब किसी महापुरुष के, इस कर्मभूमि में आने का समय होता है तभी तब उसके कुछ चिन्ह पहिले से दिखाई दे जाते हैं। इसी भाँति जब तीर्थंकर होने वाला जीव गर्भ में आता है तब उस विदुषी को यानी तीर्थंकर जब गर्भ में आते हैं तब उनकी माताओं को चौदह स्वप्न आते हैं। सब तीर्थंकरों की माताओं को एक ही से स्वप्न आते हैं। स्वप्न में जो पदार्थ आते हैं उन के दीखने का क्रम भी समान ही होता है। केवल प्रारम्भ में फर्क हो जाता है। जैसे ऋषभ देव जी

की माता मरुदेवी ने पहिले वृषभ–बैल देखा था, अरिष्टनेमि की माता शिवादेवी ने पहिले हस्ति-हाथी देखा था आदि। ये स्वप्न चौदह महा स्वप्नों के नामों से पहिचाने जाते हैं। जो पदार्थ स्वप्न में दीखते हैं उन के नाम ये हैं (१) वृषभ (२) हस्ति (३) केसरी सिंह (४) लक्ष्मी देवी (५) पुष्पमाला (६) चन्द्र मंडल (७) सूर्य (८) महाध्वज (९) स्वर्ण कलश (१०) पद्मसरोवर (११) क्षीर समुद्र (१२) विमान (१३) रत्नपुंज और (१४) निर्धूम अग्नि।

ये पदार्थ कैसे होते हैं उनका वर्णन शास्त्रकारों ने इस तरह किया है।

(१) वृषभ उज्ज्वल, पुष्ट और सुन्दर स्कंधवाला, लम्बी और सीधी पूछवाला, स्वर्ण के घूघरों की माला वाला और विद्युत युक्त–बिजली सहित शरद ऋतु के मेघ समान वर्ण वाला होता है।

(२) हाथी–सफेद रंग वाला, प्रमाण के अनुसार ऊंचा, निरन्तर गंडस्थल से झरते हुए मद से रमणीय, चलते हुए कैलाश पर्वत की भ्रान्ति कराने वाला और चार दांत वाला होता है।

जब ये चौदह स्वप्न आते हैं और तीर्थंकर, देवलोक से च्यव कर माता के गर्भ में आते हैं तब इन्द्रों के आसन धूजते हैं। इन्द्र उपयोग देकर देखते हैं। उनको मालूम होता है कि, भगवान का जीव अमुक स्थानमें गर्भ में गया है तब वे वहां जाते हैं और गर्भधारण करने वाली माता को इन्द्र इस तरह स्वप्नों का फल सुनाते हैं —

'हे स्वामिनी! तुमने स्वप्नमें वृषभ देखा इससे तुम्हारा कूख से मोहरूपी कीच में फंसे हुए धर्मरूपी रथको निकालने वाला पुत्र होगा। आपने हाथी देखा इससे आपका पुत्र महान पुरुषों का भी गुरु और बलका स्थान रूप होगा। सिंह देखा इससे आपका पुत्र पुरुषों में सिंह के समान धीर, निर्भय, शूरवीर और अस्खलित पराक्रमवाला होगा। लक्ष्मीदेवी देखी इससे आपका पुत्र तीन लोक की साम्राज्यलक्ष्मी का पति होगा। पुष्पमाला देखी इससे आपका पुत्र पुण्य दर्शनवाला होगा, अखिल जगत उसकी आज्ञा को माला की तरह धारण करेगा। पूर्णचन्द्र देखा इससे आपका पुत्र मनोहर और नेत्रों को आनंद देनेवाला होगा। सूर्य देखा उससे तुम्हारा पुत्र मोहरूपी अन्धकार को नष्ट कर जगत में उद्योत करने

वाला होगा । धर्मध्वज देखा इससे आपका पुत्र आपके वंश में महान प्रतिष्ठा वाला और धर्म ध्वजी होगा । पूर्ण कुंभ देखा, इस से आपका पुत्र सर्व अतिशयों से पूर्ण यानी सर्व अतिशय युक्त होगा । पद्म सरोवर देखा इस से आपका पुत्र संसार रूपी जंगल में पाप-ताप से तपते हुए मनुष्यों का ताप हरेगा । क्षीर समुद्र देखा इस से आपका पुत्र अधृष्य—नहीं पहुंचने योग्य होने पर भी लोग उस के पास जा सकेंगे । विमान देखा इस से आपके पुत्रकी वैमानिक देव भी सेवा करेंगे । रत्नकुंज देखा इससे आपका पुत्र सर्वगुण सम्पन्न रत्नों की खान के समान होगा । और जाज्वल्यमान निर्धूम अग्नि देखी इससे आपका पुत्र अन्य तेजस्वियों के तेज को फीका करने वाला होगा । आपने चौदह स्वप्ने ही देखे हैं इससे आपका पुत्र चौदह राजलोक का स्वामी होगा ।"

स्वप्नों का फल सुनाकर इन्द्र अपने अपने स्थान पर चले जाते हैं।

पंचकल्याणक ।

तीर्थंकरों के जन्मादि के समय इन्द्रादि देव मिल कर जो उत्सव करते हैं उस उत्सव को कल्याणक कहते हैं । इन

वस्तुओं को देवता अपना और प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला समझते हैं इसी लिए इनका नाम कल्याणक रक्खा गया है। ये एक तीर्थंकर के जीवन में पांच बार किये जाते हैं इस लिये इनका नाम पंचकल्याणक रक्खा गया है। इन पाँचों के नाम हैं [१] गर्भ कल्याणक [२] जन्म कल्याणक [३] दीक्षा कल्याणक [४] केवल ज्ञान कल्याणक और [५] निर्वाण कल्याणक। इन पाँचों कल्याणक के समय इन्द्रादि देव कैसी तैयारियां करते हैं उनका स्वरूप यहां लिखा जाता है।

[१] गर्भ कल्याणक—भगवान का जब जब माता के गर्भ में आता है तब इन्द्रों के आसन कंपित होते हैं। इन्द्र सिंहासन से उतर कर भगवान की स्तुति करते हैं और फिर जिस स्थान पर भगवान उत्पन्न होने वाले होते हैं वहां वे जाकर भगवान की माता को जो चौदह स्वप्न आते हैं उन स्वप्नों का फल सुनाते हैं। बस इस कल्याणक में इतना ही होना है।

[२] जन्म कल्याणक—भगवान् का जब जन्म होता है तब यह उत्सव किया जाता है। जब भगवान का प्रसव होता है तब दिक्कुमारियां आती हैं।

सबसे पहिले अधोलोक की आठ दिशा कुमारियाँ आती हैं। इनके नाम ये हैं —भोगकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिंदिता। ये आकर भगवान को और उनकी माता को नमस्कार करती हैं। फिर भगवान की मातासे कहती हैं कि, हम अधोलोक की दिक्कुमारियें हैं। तुमने तीर्थंकर भगवान को जन्म दिया है। हम उनका जन्म उत्सव करने यहां आई हैं। तुम किसी तरह का भय न करना। तत्पश्चात वे पूर्वदिशा की ओर मुखवाला एक सूतिका गृह बनाती हैं। उसमें एक हजार स्तंभ होते हैं। फिर 'संवर्त' नाम की पवन चलाती हैं। उससे सूतिका गृह के एक एक योजन तक का भाग कंटक और कचरा रहित हो जाता है। इतने होने बाद ये गीत गाती हुई भगवान के पास बैठती हैं।

इसके बाद मेरु पर्वत पर रहने वाली ऊर्ध्वलोक वासिनी, मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और बलाहिका, नामक आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं। वे भगवान और उनकी माता को नमस्कार कर वैक्रिया से आकाश में बादल कर, सुगंधित जल की वृष्टि

करती है। जिससे अधोलोक वासिनी दिक्कुमारिका की साफ
की हुई एक योजन जगह की धूल नष्ट हो जाती है, और
सुगंध से परिपूर्ण हो जाती है। फिर वे पचवर्णी पुष्प वरसाती
हैं। इनमें पुष्प अनेक प्रकार के रंगों हुए दिखते हैं। पश्चात्
वे आठों तीर्थंकर के गुणानुवाद गाती हुई अपने स्थान पर बैठ
जाती हैं।

इसके बाद पूर्व रुचकाद्रि ऊपर रहनेवाली नंदा, नन्दोत्तरा,
आनन्दा, नन्दिवर्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और
अपराजिता नाम की आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं। ये
माता दोनों को नमस्कार कर अपने हाथों में दर्पण-आइने
ले गीत गाती हुई पूर्व दिशा में खड़ी होती हैं।

इसके बाद दक्षिण रुचकाद्रि में रहने वाली समाहारा
सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती चित्र
गुप्ता और वसुंधरा नामक आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं और

१—[illegible]

दोनों माता-पुत्र को नमस्कार कर, हाथों में कलश ले गीत गाती हुई दक्षिण दिशा में खड़ी रहती हैं ।

इसके बाद, पश्चिम रुचकाद्रि में रहने वाली इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, अनवमिका, भद्रा और अशोका नामकी आठ दिक्कुमारियाँ आती हैं और दोनों को प्रणाम कर हाथों में पंखे ले गीत गाती हुई पश्चिम दिशा में खड़ी हो जाती हैं ।

फिर उत्तर रुचक पर्वत पर रहने वाली अलम्बुसा, मिश्र केशी, पुन्डरीका, वारुणी हासा, श्री और ह्री नामकी आठ दिक्कुमारियां आती हैं और दोनों को नमस्कार कर, हाथों में चमर ले गीत गाती हुई उत्तर दिशा में खड़ी होती हैं ।

फिर ईशान, अग्नि, वायव्य और नैऋत्य विदिशाओं के अन्दर रहने वाली चित्रा, चित्रकनका, सतेरा और सूत्रा मणि नामकी दिक्कुमारियाँ आती हैं और दोनों को नमस्कार कर, अपनी अपनी विदिशाओं में दीपक लेकर गीत गाती हुई खड़ी होती हैं ।

इन सबके पश्चात् रुचक द्वीपसे रूपा, रूपासिका सुरूपा और रूपकावती नामकी चार दिक्कुमारियाँ आती हैं। फिर भगवान के जन्मगृह के पास ही पूर्व दक्षिण और उत्तर में तीन कदली गृह बनाती हैं। प्रत्येक गृह में विमानों के समान सिंहासन सहित विशाल चौक रचती हैं। फिर भगवान को अपने हाथों में उठा, माता को चतुर दासी की भाँति सहारा दे दक्षिण के चौक में ले जाती हैं। दोनों को सिंहासन पर बिठाती हैं और लक्षपाक तैल की मालिश करती हैं। यहाँ से इन्हें पूर्व दिशा के चौक में लेजाकर सिंहासन पर बिठाती हैं, स्नान करवाती हैं, सुगंधित काषाय वस्त्रों से उनका शरीर पोंछती हैं, गोशीर्ष चन्दन का विलेपन करती हैं और दोनों को दिव्य वस्त्र तथा विद्युत् के प्रकाश समान विचित्र आभूषण पहिराती हैं। तत्पश्चात् वे दोनों को उत्तर के चौक में लेजाकर सिंहासन पर बिठाती हैं। यहाँ वे आभियोगिक देवताओं के पास से क्षुद्र हिमवंत पर्वत से गोशीर्ष चंदन का काष्ठ मँगवाती हैं। अरणि की दो लकड़ियों से अग्नि उत्पन्न कर होमने योग्य तैयार किये हुए गोशीर्ष चंदन के काष्ठ से होम करती हैं। उसमें जो भस्म होती है उसकी रक्षा पोटली कर वे दोनों के

हाथों में बाँध देती हैं। यद्यपि प्रभु और उनकी माता महा महिमामय ही हैं, तथापि दिक्कुमारियों का ऐसा भक्ति क्रम है, इसलिए वे करती ही हैं। तत्पश्चात वे भगवान् के कान में कहती हैं –'तुम दीर्घायु हो ओ।' फिर पापाप के दो गोलों को पृथ्वी में पछाड़ती हैं और तब दोनों को वहाँ से सूतिका गृह में लेजाकर सुला देती हैं और गीत गाने लगती हैं।

दिक्कुमारी जब क्रियायें करती हैं उस समय स्वर्ग में शाश्वत घंटों की एक साथ उच्च ध्वनि होती है उसको सुन कर सौधर्म देव लोक के इन्द्र सौधर्मेन्द्र एक असभाव्य और अप्रतिम विमान रचवा कर तीर्थकरों के जन्म नगर को जाता है। वह विमान पाचसौ योजन ऊचा और एक लाख योजन विस्तृत होता है। उसके साथ आठ इन्द्राणियाँ और उनके आधीनके हजारों लाखो देवता भी जाते हैं। विमान जब स्वर्ग से चलता है तब ऊपर बताया गया इतना बड़ा होता है। परन्तु जब वह जैसे जैसे भारत क्षेत्र की ओर आता जाता है वैसे ही वैसे वह सकुचित होता जाता है यानी इन्द्र अपनी विक्रिया ऋद्धि के बल उसे छोटा बनाता जाता है। जब विमान सूतिकागृह के पास पहुँचता है तब वह बहुत ही छोटा हो

जाता है। वहा पहुँचने पर सिंहासन में बैठे ही बैठे इन्द्र सूतिका गृह की परिक्रमा देता है और फिर उसे ईशान कोण में छोड़ आप हर्षचित्त होकर प्रभु के पास आता है। वहा प्रभुको प्रणाम करता है फिर माता को प्रणाम कर कहता है, "माता! मैं सौधर्म देवलोक का इन्द्र हू। भगवान का जन्मोत्सव करने के लिए आया हू। आप किसी प्रकार का भय न रक्खें।"

इतना कह कर वह भगवानकी माता पर अवस्वापनिका नामकी निद्राका प्रयोग करता है। इससे माता निद्रित-बेहोशी की दशा में हो जाती है। भगवान की प्रतिकृति का एक पुतला भी बनाकर उनकी बगल में रख देता है फिर वह अपने पाच रूप बनाता है। देवता सब कुछ कर सकते हैं। एक स्वरूप से भगवान को अपने हाथों में उठाता है। दूसरे दो स्वरूपों से दोनों तरफ खड़ा होकर चवर ढोलने लगता है। एक स्वरूप से छत्र हाथ में लेता है और एक स्वरूप से चोबदार की भाँति वज्र धारण करके आगे रहता है। इस तरह अपने पाँच स्वरूप सहित वह भगवान को लेकर आकाश मार्ग द्वारा मेरु पर्वत पर ले जाता है। देवता जयनाद करते हुए

उसके साथ जाते हैं। मेरु पर्वत पर पहुँच कर वह निर्मल कांतिवाली अति पाडुकबला नामकी शिला-(जो अर्हन्त-स्नात्र के योग्य होती है-) सिंहासन पर, भगवान को अपनी गोद मे लिए हुए बैठ जाता है।

जिस समय वह मेरु पर्वत पर पहुँचता है उस समय 'महाघोष' नामका घंटा बजता है, उसको सुन, तीर्थंकर का जन्म जान अन्यान्य ६३ इन्द्र भी मेरु पर्वत पर आते हैं। उनके नाम ये हैं —

२-ईशानेन्द्र अपने अठासी लाख विमानवासी देवता सहित 'पुष्पक' विमान में बैठ कर आता है।

३-सनत्कुमार इन्द्र बारह लाख विमानवासी देवता सहित 'सुमन' विमान मे बैठ कर आता है।

४-महेन्द्र इन्द्र आठ लाख विमानवासी देवता सहित 'श्रीवत्स' विमान में बैठ कर आता है।

५-ब्रह्मेन्द्र इन्द्र चार लाख विमानवासी देवता सहित 'नद्यावर्त' विमान में बैठ कर आता है।

६-लांतक इन्द्र पचास हजार विमानवासी देवता सहित 'कामगव' विमान में बैठ कर आता है।

७–शुक्र इन्द्र चालीस हजार विमानवासी देवता सहित 'पीतिगम' विमान में बैठ कर आता है।

८–'सहस्रार' इन्द्र छ हजार विमानवासी देवता सहित 'मनोरम' विमान में बैठ कर आता है।

९–'आनत प्राणत' देवलोक का इन्द्र चारसौ विमान वासी देवता सहित 'विमल' विमान में बैठ कर आता है।

१०–आरणाच्युत देवलोक का इन्द्र तीनसौ विमान वासी देवता सहित 'सर्वतोभद्र (भुवन पति देवों के इन्द्र) नाम के विमान में बैठ कर आता है।

११–'चमरचंच' नगरी का स्वामी 'चमरेन्द्र' इन्द्र अपने लाखों देवता सहित आता है।

१२–'बलिचंचा' नगरी का स्वामी 'बलि' इन्द्र अपने देवताओं सहित आता है।

१३–धरण नामक इन्द्र अपने नागकुमार देवताओं सहित आता है।

१४–भूतानन्द नामक इन्द्र अपने ,, ,, ,,

१५–१६–विद्युत्कुमार देवलोक के इन्द्र हरि और हरिसह आते है

१७–१८–सुवर्णकुमार देवलोकके इन्द्र वेणुदेव और वेणुदारी आते हैं।

१९–२०–अग्निकुमार देवलोक के इन्द्र अग्निशिख और अग्निमाणव आते हैं।

२१–२२ वायुकुमार देवलोक के इन्द्र वेलम्ब और प्रभजन आते हैं।

२३–२४–स्तनितकुमार के इन्द्र सुघोष और महाघोष आते हैं।

२५–२६–उदधिकुमार के इन्द्र जयकान्त और जलप्रभ ,,

२७–२८–द्वीपकुमार के इन्द्र पूर्ण और अविशिष्ट ,,

२९–३०–दिक्कुमार के इन्द्र अमित और अमित वाहन ,,

(व्यंतर योनि के देवेन्द्र।)

३१–३२–पिशाचो के इन्द्र काल और महाकाल,

३३–३४–भूतो के इन्द्र सुरूप और प्रतिरूप,

३५–३६–यक्षों के इन्द्र पूर्णभद्र और माणिभद्र,

३७–३८–राक्षसों के इन्द्र भीम और महाभीम,

३९–४०–किन्नरों के इन्द्र किंनर और किंपुरुष,

४१–४२–किंपुरुषों के इन्द्र सत्पुरुष और महापुरुष,

६४ इन्द्र अपने लस.जेघो देवताओं सहित सुमेरु पर्वत पर भगवान का जन्मोत्सव करने आते हैं ।*

सब के आजाने बाद अन्युतेन्द्र जन्मोत्सव के उपकरण लाने की अभियोगिक देवताओं को आज्ञा देता है । वे ईशान कोण में जाते हैं । वे क्रियसमुद्घात द्वारा उत्तमोत्तम पुद्गलों का आकर्षण करते हैं । उनमें (१) सोने के (२) चांदी के (३) रत्न के (४) सोने और चांदी के (५) सोने और रत्न के (६) चांदी और रत्न के (७) सोना चांदी और रत्न के तथा (८) मिट्टी के इसतरह आठ प्रकारके कलश बनाते हैं। प्रत्येक प्रकारके कलश की सङ्ख्या एक हज़ार आठ होती है। कुल मिलाकर इन घड़ों की सख्या एक करोड़ और साठ लाख की होती है । इनकी ऊंचाई पचास योजन, चौड़ाई बारह योजन और इन की नाली का मुह एक योजन होता है। इसी प्रकार आठ तरह के पदार्थों से भारिया दर्पण रत्न के करंडिये, सुप्रतिष्ठक (डिब्बियां) थाल, पात्रिकाएं और पुष्प

*ज्योतिष्कों के असंख्यात इन्द्र हैं । वे सभी आते हैं । इसलिए असंख्यात इन्द्र भगवान प्रभु का जन्मोत्सव करते हैं । असंख्य तो के नाम चन्द्र और सूर्य ही हैं इसलिए दो ही गिने गये हैं ।

४३-४४-महारगों क इ द्र अतिकाय और महाकाय,
४५-४६-गधर्वों क इन्द्र गीतरति और गीतयशा,

(वाण व्यतरों का दूसरी आठ निकाय के इन्द्र)

४७-४८-अप्रशाति क इन्द्र सनिहित और समानक,
४६-५०-पचप्रज्ञाति क इन्द्र धाता और विधाता
५१-५२-ऋषिवादिता क इन्द्र ऋषि और ऋषिपालक
५३-५४-भूतवादितना क इन्द्र ईश्वर और महेश्वर
५५-५६-क्रदितना क इन्द्र सुवत्सक और विलाशक,
५७-५८-महाक्रदितना के इन्द्र हास और हासरति
५६-६०-कुष्माडना के इन्द्र श्वत और महाश्वत,
६१-६२-पावकना के इन्द्र पवक और पवकपति,
६३-६४ ज्योतिष्क देवों क इन्द्र-सूर्य और चन्द्रमा

इस तरह वैमानिक के दस (सख्या १-१० तक) इन्द्र भुवनपति की, दस, निकायक बीस (सख्या ११-३० तक) इन्द्र व्यतरा क बत्तास (सख्या ३१-६२) इन्द्र और ज्योतिष्कों क दो (सख्या ६३-६४ तक) इन्द्र कुल मिलाकर

६४ इन्द्र अपने लत्ताबधी देवताओं सहित सुमेरु पर्वत पर भगवान का जन्मोत्सव करने आते हैं ।*

सब के आजाने बाद अच्युतेन्द्र जन्मोत्सव के उपकरण लाने की अभियोगिक देवताओं को आज्ञा देता है । वे ईशान कोण में जाते हैं । वैक्रियसमुद्घात द्वारा उत्तमोत्तम पुद्गलों का आकर्षण करते हैं । उनसे (१) सोने के (२) चांदी के (३) रत्न के (४) सोने और चान्दी के (५) सोने और रत्न के (६) चांदी और रत्न के (७) सोना चांदी और रत्न के तथा (८) मिट्टी के इसतरह आठ प्रकारके कलस बनाते हैं । प्रत्येक प्रकारके कलश की संख्या एक हजार आठ होती है । कुल मिलाकर इन घड़ों की संख्या एक करोड और साठ लाख की होती है । इनकी ऊंचाई पचास योजन, चौडाई बारह योजन और इन की नाली या मुह एक योजन होता है । इसी प्रकार आठ तरह के पदार्थों से झारिया दर्पण रत्न के करंडिये, सुप्रतिष्ठक (डिब्बियां) थाल, पात्रिकाएं और पुष्पा

*ज्योतिषियों के असंख्यात इन्द्र हैं । वे सभी आते हैं । इसलिए असंख्यात इन्द्र मिलकर प्रभु का जन्मोत्सव करते हैं । असंख्यात के नाम चन्द्र और सूर्य ही हैं इसलिए दो ही गिने गये हैं ।

भगवान के चारों तरफ स्फटिक मणि के चार बैल बनाता है। उनके सींगों से फव्वारों की तरह पानी गिरता है। पानी की धारा चारों ओर से भगवान पर पड़ती है। स्नान करा कर फिर अच्युतेन्द्र की भाँति ही पूजा, स्तुति आदि करता है। तत्पश्चात वह फिर से पहिले ही की भाँति अपने पाँच रूप बना कर भगवान को ले लेता है।

इस प्रकार विधि समाप्त हो जाने पर सौधर्मेन्द्र भगवान को वापिस उनकी माता के पास ले जाता है। सोने की आकृति माता की गोद से हटा कर भगवान को लिटा देता है। माता की 'अस्वापति का' नामकी निद्रा को हरण करता है, तीर्थंकरों के खेलने के लिए खिलौने रखता है, कुबेर को धनरत्न से प्रभु का भंडार भरने के लिये कहता है। कुबेर आज्ञा का पालन करता है। यह नियम है कि अर्हत स्तन पान नहीं करते है, इसलिए उनके अंगूठे में अमृत का संचार करता है। इस से जिस समय उन्हें क्षुधा लगती है अपने पैर का अंगूठा मुंह में लेकर चूस लेते हैं। फिर धात्री-कर्म धाय का कार्य करने के लिए चार अप्सराओं को रख कर इन्द्र चला जाता है।

१—दीक्षाकल्याणक । तीर्थंकरों के दीक्षा लेने का समय आता है उसके पहिले तीर्थंकर वर्षी दान देते हैं । इस में एक वर्ष तक तीर्थंकर याचकों का जो चाहिये सो देते हैं । नित्य एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्रा देते हैं । एक वर्ष में कुल मिलाकर तीनसौ अठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएं दान में देते हैं । यह धन इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ला कर पूरा करता है ।

जब दीक्षाका दिन आता है तब इन्द्रों के आसन चलित होते है । इन्द्र भक्तिपूर्वक प्रभु के पास आते है और उन्हें एक पालकी तैयार कर उसमें बैठाते है । फिर मनुष्य और देव सब मिल कर पालकी उठाते हैं, प्रभु को बन में ले जाते है । प्रभु वहां सब वस्त्रालंकार उतार कर डाल देते हैं और इन्द्र देव दुष्य वस्त्र देता है उसे ग्रहण करते हैं । फिर वे केशलुंचन करते हैं । सौधर्मेन्द्र उन केशों को अपने आँचल में ग्रहण कर क्षीर समुद्र में डाल आता है । तीर्थंकर फिर सावद्ययोग का त्याग करते हैं । उसी समय उन्हें 'मन पर्यवज्ञान' उत्पन्न

१—अपने ही हाथों से बालों को उखाड़ने का केशलुंचन कहते हैं ।

२—इस ज्ञान के होने से पांच इन्द्रिय जीवों के मन की बात मालूम होती ।

होता है। इन्द्रादि देवता प्रभुसे विनती करते हैं और अपने अपने स्थान पर चले जाते हैं। तीर्थंकर विहार करने लगते हैं।

४–केवलज्ञान कल्याणक। सकल संसार की, समस्त चराचर की बात जिस ज्ञान द्वारा मालूम होती है उसे केवलज्ञान कहते हैं। जिस दिन यह ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी दिन से, तीर्थंकर नामकर्म का उदय होता है। जब यह ज्ञान उत्पन्न होता है तब इन्द्रादि देव आकर उत्सव करते हैं। और प्रभु की धर्मदेशना सुनने के लिए समवसरण की रचना करते हैं। इसकी रचना देवता मिल कर करते हैं। यह एक योजन के विस्तार में रचा जाता है। वायुकुमार देवता भूमि साफ करते हैं। मेघकुमार देवता सुगंधित जल बरसा कर छिड़काव लगाते हैं। व्यंतर देव स्वर्ण माणिक्य और रत्नों से फर्श बनाते हैं, पचरंगी फूल बिछाते हैं, और रत्न, माणिक्य और मोतीयों के चारों तरफ तोरण बाँध देते हैं। रत्नादि की पुतलियाँ बनाई जाती हैं, जो किनारे पर, बड़ी सुन्दरता से सजाई जाती हैं। उनके शरीर के प्रतिबिंब परस्पर में पड़ता है इस से ऐसा मालूम होते हैं कि, वे एक दूसरों का आलिंगन कर रही हैं। स्निग्ध नीलमणियों

क पड़ हुए मगर के चिन्ह, गऊ, कामदेव परिलक्षित निज चिह्न रूप मगरकी भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं। ध्वज छत्र ऐसे सुशोभित होते हैं मानो भगवान के केवलज्ञान से दिशाएँ प्रसन्न होकर मधुर हास्य कर रही हैं। फहराती हुई ध्वजाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो पृथ्वी ने नृत्य करने के लिए अपने हाथ ऊँचे किये हैं। तोरणों के नीचे स्वस्तिक आदि आठ मंगल के जो चिन्ह बनाये जाते हैं वे बलि-पट्ट के समान मालूम होते हैं। समवसरण के ऊपरी भागको यानी सब से पहिलावाला-कोटवाला वैमानिक देवता बनाते हैं। वह रत्नमय होता है। वह ऐसा जान पड़ता है, मानो रत्नागिरिकी रत्नमय मेखला यहां लाई गई है। उस गढ़ पर-कोट पर भाँति भाँति की मणियों के कंगूरे बनाये जाते हैं वे ऐसे मालूम होते हैं, मानो वे आकाश को अपनी किरणों से विचित्र प्रकार का वस्त्रधारी बना देना चाहते हैं। उसके बाद प्रथम कोट को घेरे हुए ज्योतिष्कपति दूसरा कोट बनाते हैं। उसका स्वर्ण ऐसा मालूम होता था, मानो वह ज्योतिष्क देवों का ज्योतिका समूह है। उस कोट पर जो रत्नमय कंगूरे बनाये जाते हैं, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सुर असुरों की स्त्रियों के लिए मुख

स्थने को रत्नमय दर्पण रक्खे गये हैं। इसके बाद भुवनपति देव तीसरा कोट बनाते हैं। यह अगले दोनों को घेरे हुए होता है। वह ऐसा जान पड़ता है मानो चैतन्य पर्वत मंडलाकार हो गया है—गोल बन गया है। उस पर स्वर्ण के कंगूरे बनाए जाते हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो देवनओं की वापिकाओं—बावड़ियों के जलमें स्वर्ण के कमल खिले हुए हैं। प्रत्येक गढ़में—कोट में चार चार दरवाजे होते हैं। प्रत्येक द्वार पर व्यन्तर देव धूपारणी—धूपदानिया रखते हैं। उनसे इन्द्रमणि के समान धूम्रलता—धुआँ उठती है। समवसरण के प्रत्येक द्वार पर चार चार रस्तोंवाली बावडियां बनाई जाती हैं उनमें स्वर्ण के कमल रहते हैं। दूसरे कोट के ईशान कोण में प्रभु के विश्रामार्थ एक देवछंद—विश्राम स्थान बनाया जाता है। अन्दर के यानी प्रथम कोट के पूर्व द्वार के दोनों किनारे स्वर्ण के समान वर्णवाले दो वैमानिक देवता द्वारपाल होकर रहते हैं। दक्षिण द्वार में दो व्यन्तर देव द्वारपाल होते हैं। पश्चिम द्वार पर रक्तवर्णी दो ज्योतिष्क देव द्वारपाल होते हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो संध्या के समय सूर्य और चन्द्रमा आमने सामने आ खड़े हुए हैं। उत्तर द्वार कृष्णकाय भुवनपति

द्वारपाल होकर रहते हैं। दूसरे कोट के चारों दर्वाज़ों पर, क्रमशः अभय, पाश, अंकुश और मुग्दर को धारण करने वाली–, मरकतमणि, शोणमणि, स्फटिकमणि और नीलमणि के समान कांतिवालीं, पहिले ही की तरह चार निकायों की–चार जाति की जया, विजया, अजिता और अपराजिता नाम की दो दो देवियाँ प्रतिहार–चोपदार बन कर खड़ी रहती हैं। और अन्तिम कोट के चारों दर्वाज़ों पर, तुंबरु, खट्वांगधारी, मनुष्य मस्तक मालाधारी और जटा मुकुटसहित नामक चार देवता द्वारपाल होते हैं। समवसरण के मध्य भाग में व्यन्तर देव एक तीन कोस का ऊँचा एक चैत्य वृक्ष बनाते हैं। उस वृक्ष के नीचे विविध रत्नों की एक पीठ रची जाती है। उस पीठ पर अप्रतिम मणिमय एक छंदक रचा जाता है। छंदक के मध्य में पाद पीठ सहित रत्न-सिंहासन रचा जाता है। सिंहासन के दोनों बाजू दो यक्ष चामर लेकर खड़े होते हैं। समवसरण के चारों दर्वाज़ों पर अद्भुत कांति के समूह वाला एक एक धर्मचक्र स्वर्णिम कमल में रक्खा जाता है।

भगवान चार प्रकार के [वैमानिक, भुवनपति, व्यंतर और ज्योतिष्क] देवताओं से परिवेष्ठित समवसरण में प्रवेश करने को रवाना होते हैं। उस समय सहस्र पत्र वाले स्वर्ण के नौ कमल बना कर देवता भगवान के आगे रखते हैं। भगवान जैसे जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, वैसे ही वैसे देवता पिछले कमल उठा कर आगे धरते जाते हैं। भगवान पूर्व द्वार से समवसरण में प्रविष्ट होकर चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा करते हैं और फिर तीर्थको नमस्कार कर सूर्य जैसे अंधकार को नष्ट करने के लिए पूर्वाचल पर आरूढ़ है वैसे ही मोहरूपी अंधकार को छेदने के लिए प्रभु पूर्वाभिमुख सिंहासन पर विराजते हैं। तब व्यंतर अवशेष तीन तरफ भगवान के रत्न के तीन प्रतिबिंब बनाते हैं। यद्यपि देवता प्रभु के अंगूठेसा रूप बनाने की भी शक्ति नहीं रखते हैं तथापि प्रभु के प्रताप से उनके स्वरूप से ही बन जाते है। प्रभु के मस्तक के चारों तरफ फिरता हुआ शरीर की कान्ति का मडल (भामडल) प्रकट होता है। उसका प्रकाश इतना प्रबल होता है कि उसके सामने सूर्य का प्रकाश

१—साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका के समूह को तीर्थ कहते हैं।

से जुगनुआ मालूम होता है। प्रभु के समीप एक रत्नमय ध्वजा होती है।

विमान पति की स्त्रियां पूर्व द्वार से प्रवेश करती हैं, तीन प्रदक्षिणा देती हैं और तीर्थंकर तथा तीर्थ को नमस्कार कर प्रथम कोट में, साधु साध्वियों के लिए स्थान छोड़ कर उनके स्थान के मध्य भाग में अग्निकोण में खड़ी रहती हैं। भुवन पति, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों की स्त्रियां दक्षिण दिशा से प्रविष्ट होकर नैऋत्य कोण में खड़ी होती हैं। भुवनपति, ज्योतिष्क और व्यन्तर देवता पश्चिम द्वार से प्रविष्ट होकर वायव्य कोण में बैठते हैं। वैमानिक देवता, मनुष्य और मनुष्य स्त्रियां उत्तर द्वार से प्रविष्ट होकर ईशान दिशा में बैठते हैं। ये सब भी विमानपति देवों की स्त्रियों की भाँति ही पहिले प्रदक्षिणा देते हैं, तीर्थंकर और तीर्थ को नमस्कार करते हैं और तब अपना स्थान लेते हैं। यहाँ पहिले आये हुए—चाहे वे महान ऋद्धि वाले हों या अल्प ऋद्धि वाले हों जो कोई पीछे से आता है उसे नमस्कार करते हैं। पीछे से आने वाला पहिले से आकर बैठे हुओं को नमस्कार करता है। प्रभु के समव सरण में किसी को आने की मनाई नहीं होती। यहाँ किसी

तरह का विकथा नहीं होती, विरोधियों को वहाँ वैरभाव नहीं रहता, वहाँ किसी को किसी का भय नहीं होता। दूसरे कोट में तिर्यंच आकर बैठते हैं और तीसरे कोट में—गढ में सब के वाहन रहते हैं।

५ निर्वाणकल्याणक। जब तीर्थंकरों के शरीर से आत्म-हंस उड़ कर मोक्ष में चला जाता है, तब इन्द्रादि देव शरीर का सस्कार करने के लिए आते हैं। अभियोगिक देव नन्दन वन में से गोशीर्ष चन्दन के काष्ट लाकर पूर्व दिशा में एक गोलाकार चिता रचते हैं। अन्य देवता क्षीरसमुद्र का जल लाते हैं उससे इन्द्र भगवान के शरीर को स्नान कराता है, गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है, हंस लक्षण वाले श्वेत देव दुष्य वस्त्र से शरीर को आच्छादन करता है और मणि काके आभूषणों से उसे विभूषित करता है। दूसरे देवता भी इन्द्र की भांति ही शरीर को स्नानादि कराते हैं। फिर एक रत्न की शिविका तैयार करते हैं। इन्द्र शरीर को उठा कर शिबिका में रखता है। इन्द्र ही उसको उठाता है। शिविका के आगे आगे कई देवता धूपदानियां लेकर चलते हैं। कई शिबिका पर पुष्प उछालते हैं, कई रत्न पुष्पों को उठाते हैं।

कई आगे देव दुष्य वस्त्रों के तोरण बनाते थे, कई यक्षकर्दम का छिड़काव करते थे, कई गोफन में फेंके हुए पत्थर की तरह शिविका के आगे लौटते थ, और कई रुदन करते हुए पीछे पीछे आते थे।

इस तरह शिविका चिता के पास पहुंचती है। इन्द्र प्रभु के शरीर को चिता में रखता है। अग्निकुमार देवता चितामें अग्नि लगाता है। वायुकुमार देवता वायु चलाता है इससे चारों तरफ अग्नि फैल कर जलने लगती है। चिता में देवता बहुत सा कपूर और घड़े भर २ के घी तथा शहद डालते हैं। जब अस्थिके सिवा सब धातु नष्ट हो जाते हैं तब मेघकुमार और समुद्र का जल बरसा कर चिता ठंडी करता है। फिर सौधर्मेंद्र ऊपरकी दाहिना दाढ लेता है, चमरेन्द्र नीचे का दाहिनी डाढ लेता है, ईशानेन्द्र ने ऊपर की बाईं दाढ ग्रहण की और बलीन्द्र ने नीचे की बाईं डाढ ली। अन्यान्य देवों ने अस्थियां लीं।

फिर वे उस स्थान पर–जहां प्रभु का अग्निसंस्कार होता है तीन समाधियां बनाते हैं और तब सब अपने २ स्थान पर चले जाते हैं।

अतिशय।

अतिशय—यानी उत्कृष्टता, विशिष्ट चमत्कारा गुण। जो आत्मा ईश्वर स्वरूप होकर पृथ्वी मन्डल पर आता है उसमें सामान्य आत्माओं की अपेक्षा कई विशेषताए होती हैं। उन्हीं विशेषताओं को शास्त्रकारों ने 'अतिशय कहा' है। अतिशय तीर्थंकरोंके चौंतीस अतिशय होते हैं वे इस प्रकार होते हैं —

१—शरीर अनन्त रूपमय, सुगन्धमय, रोगरहित, प्रस्वेद-पसीना रहित और मल रहित होता है।

२—उनका रुधिर दुग्ध के समान सफेद और दुर्गन्ध हीन होता है।

३—उनके आहार तथा निहार चर्मचक्षु गोचर नहीं होते हैं।

४—उनके श्वासोच्छ्वास में कमल के समान सुगन्ध होती है।

५—समवसरण केवल एक योजन का होता है, परन्तु उसमें

कोटाकोटि मनुष्य, देव और तिर्यंच विना किसी प्रकार की बाधा के बैठ सकते हैं।

६—ज.।ं वे होते हैं वहां से पच्चीस योजन तक यानी दो सौ कोस तक आसपासमें कहीं कोई रोग नहीं होता है और जो पहिले होता है वह भी नष्ट हो जाता है।

७—लोगों का पारस्परिक वैरभाव नष्ट हो जाता है।

८—मरी का रोग नहीं फैलता है।

९—अतिवृष्टि आवश्यकता से ज्यादा बारिश नहीं होता है।

१०—अनावृष्टि बारिश का अभाव—नहीं होता है।

११—दुर्भिक्ष नहीं पड़ता है।

१२—उनके शासन का या किसी दूसरे के शासन का लोगों को भय नहीं रहता है।

१३—उनके वचन ऐसे होते हैं कि, जिन्हें देवता, मनुष्य और तिर्यंच सब अपनी अपनी भाषा में समझ लेते हैं।

१—वचन ३५ गुण वाले होते हैं। (१) सब जगह समझे जा सकते हैं। (२) एक योजन तक वे सुनाई देते हैं। (३) प्रौढ़ (४) मेघ के समान गंभीर (५) सुस्पष्ट शब्दों में (६) संतोष कारक (७) हरएक सुनने वाला समझता है कि वे वचन मुझी को कहे जाते हैं (८) गूढ़ आशय वाले (९) पूर्वापर विरोध रहित (१०) महा पुरुषों के योग्य (११ सन्देह विहीन (१२) दूषण रहित अर्थ वाले (१३) कठिन विषय को सरलता से समझाने वाले (१४) जहां जैसे शोभे वहां वैसे बोले जा सकें (१५) षट् द्रव्य और नौ तत्त्वों को पुष्ट करने वाले (१६) हेतु पूर्ण (१७) पद रचना सहित (१८) छः द्रव्य और नौ तत्त्वों की पटुता सहित (१९) मधुर (२०) दूसरे का मर्म समझमें न आवे ऐसी चतुराई वाले (२१) धर्म अर्थ प्रति बद्ध (२२) दीपक के समान प्रकाश अर्थ सहित (२३) पर निन्दा और स्व प्रशंसा रहित (२४) कर्ता, कर्म, क्रिया काल और विभक्ति सहित (२५) आश्चर्यकारी (२६) उनको सुनने वाला समझे कि वक्ता सब गुण सम्पन्न है। (२७) धैर्य वाले (२८) विलम्ब रहित (२९) भ्रान्ति रहित (३०) प्रत्येक अपनी अपनी भाषा में समझ सकें ऐसे (३१) शिष्ट बुद्धि उत्पन्न करने वाले (३२) पदों का अर्थ अनेक तरह से विशेष रूपसे बोला जाय ऐसे (३३) साहस पूर्ण (३४ पुनरुक्ति दोष रहित और (३५) सुनने वाले को दुःख न हो।

१४–एक योजन तक उनके वचन समानरूपसे सुनाई देते हैं।

१५–सूर्य की अपेक्षा बारह गुना अधिक उन के भामंडल का तेज होता है।

१६ आकाश में धर्म चक्र होता है।

१७–बारह जोड़ी (चौबीस) चँवर बगैर ढुलाये ढुलते हैं।

१८–पादपीठ सहित स्फटिक रत्न का उज्ज्वल सिंहासन होता है।

१९–प्रत्येक दिशा में तीन तीन छत्र होते हैं।

२०–रत्नमय धर्मध्वज होता है। इसको इन्द्र ध्वजा भी कहते हैं।

२१–नौ स्वर्ण कमल पर चलते हैं (दो पर पैर रखते हैं) सात पीछे रहते हैं। जैसे जैसे आगे बढते जाते हैं वैसे ही वैसे देवता पिछले कमल उठाकर आगे रखते जाते हैं।

२२–मणिका, स्वर्ण का और चाँदी का इस तरह तीन गढ़ होते हैं।

२३–चार मुँह से दशना -धर्मोपदेश–देते है। (पूर्व दिशा में भगवान बैठते हैं और शेष तीन दिशाओं में व्यतर देव तीन प्रतिबिंब रखते हैं।)

२४–उनके शरीर प्रमाण से बारह गुणा अशोक वृक्ष होता है। यह छत्र, घटा और पताका आदि से युक्त होता है।

२५–काँटे अधोमुख नष्ट हो जाते है।

२६–चलते समय वृक्ष भी झुक कर प्रणाम करते है।

२७- चलते समय आकाश म दुंदुभि बजते हैं।

२८ योजन प्रमाण में अनुकूल वायु होता है।

२९- मोर आदि शुभ पक्षी प्रदक्षिणा देते फिरते हैं।

३० सुगंधित जल की वृष्टि होती है।

३१–जल–स्थल में उद्‌भूत पाँच वर्ण वाले सचित्त फूलों की, घुटने तक आ जायँ इतना, वृष्टि होती है।

३२–केश, रोम, दाढ़ी- मूछ और नाखून (दीक्षा लेने के बाद) बढते नहीं है।

३३ -कम से कम चार निकाय के एक करोड़ देवता पास मे रहते हैं।

(अ) जिनसे अपने भवन के अपाय उपद्रव द्रव्य से और भाव से नष्ट होते हैं वे 'स्वाश्रयी' कहलाते हैं।

(ब) जिनसे दूसरों के उपद्रव नष्ट होते हैं उन्हें 'पराश्रयी' अपायापगमातिशय कहते हैं। अर्थात् जहाँ भगवान विचरण करते हैं वहां से प्रत्येक दिशा में सवासौ योजन तक प्रायः रोग, मरी, वैर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि दुष्काल आदि उपद्रव नहीं होते हैं।

२—ज्ञानातिशय—इस से तीर्थंकर लोकालोक का स्वरूप भली प्रकार से जानते हैं। भगवान को केवलज्ञान होता है इस से कोई भी बात उनसे छिपी हुई नहीं रहती है।

१—अरि राग द्वेष शत्रु हैं।

२—अंतरंग के अठारह दूषण भाव उपद्रव हैं। अठारह उपद्रव ये हैं— (१) दानान्तराय ( ) लाभान्तराय (३) भोगान्तराय (४) उपभोगान्तराय (५) वीर्यान्तराय (६) हास्य (७) रति (८) अरति ( ) शोक (१०) भय (११) जुगुप्सा-निन्दा (१२) काम (१३) मिथ्यात्व (१४) अज्ञान (१५) निद्रा (१६) अविरति (१७) राग, और (१८) द्वेष।

तीर्थंकर चरित्र भूमिका

का

शुद्धा शुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	२	१८८	१९८
५	३	२६१	२५१
७	८	धूम्र	वामन
७	९	वामन	कुब्जक
७	१०	वामन	हुण्डक
७	१६	ऋषभनाराच	ऋषभनाराच
७	२०	कालिका	कालक
९	५	क्षुलक्कभव	क्षुल्लकभव
९	९	१९७, ७७, २६२	१९७, ७७, २१९
१०	७	दो पल्योपम	एक पल्योपम
११	८	तीन हाथ	एक हाथ
११	१५	अवसर्पिणी	अवसर्पिणी
१७	९	रत्न कुम्भ	रत्न पुंज
१३	४	पाषाप	पाषाण
११	१२	पैर का अगूठा	हाथ का अंगूठा
४६	६	कर्मक्षय जातिशय	कर्मक्षयातिशय